10 एक खिलाड़ी की माँ होने की खुशियाँ

देविका नाडिग

मैंने बारह बरस तक एक स्कूल की मुखिया और पन्द्रह बरस तक शतरंज जैसे कठिन, एकाकी खेल की चैम्पियन की माँ होने का आनन्द उठाया और इस अनुभव से मैं सही सलामत निकल आई। इसके बाद यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि मैंने प्रतिस्पर्धात्मक खेल और उसकी दुनिया, दोनों का खूब अनुभव हासिल किया है।

मैं नहीं जानती कि पहले क्या आया–मेरी बेटी कृतिका का बारम्बार स्कूल न जाना और नतीजतन, उसके प्रिंसिपल से छुट्टी की लिखित इजाजत के इन्तजार में उनके ऑफिस के बाहर घण्टों खड़े रहने का मेरा तकलीफदेह अनुभव – या फिर स्कूल की मुखिया के रूप में मेरा सकारात्मक रवैया, जिसके चलते मैं बच्चों को उनके पसन्दीदा खेल में पूरी गम्भीरता से लग जाने की अनुमति सहर्ष दे दिया करती थी। शायद एक से ही दूसरा निकला होगा।

बहरहाल, मैं जोखिम उठाते हुए अपने इस विश्वास पर कायम रही कि पीछे छूटी पढ़ाई की भरपाई के दबाव सहित तमाम कष्टों के बावजूद, स्कूली–जीवन के दौरान खेलों में भाग लेना एक करने लायक बात है। इसलिए खिलाड़ी बनने के आकांक्षी विद्यार्थी मेरे नेतृत्व में चल रहे स्कूल की ओर खिंचे चले आते थे। जल्द ही हमारी ख्याति इस बात के लिए हो गई कि हम खेल–आकांक्षियों का 'ध्यान रखते हैं'; उनके लगातार चलने वाले प्रशिक्षणों और प्रतियोगिताओं की कार्यक्रम–सारणी में सहयोग करते हैं, और अपनी इन व्यस्तताओं से छुट्टी पाकर जब भी वे स्कूल लौटते हैं, तो हम उनके शैक्षणिक मूल्यांकन तथा परीक्षा आदि की सारणी में फेर–बदल की गुंजाइश रखते हैं। विडम्बना यह, कि एक ओर जहाँ मेरे अपने स्कूल के कई विद्यार्थियों के लिए मैंने यह सब किया, वहीं मेरी अपनी बेटी को अपने परम्परागत स्कूल में कई मुश्किलों का सामना करना पड़ा। कृतिका को मेरे स्कूल में प्रवेश दिलाने का तो सवाल ही नहीं उठता था क्योंकि मैं उसे उस विशिष्ट बर्ताव से दूर रखना चाहती थी जो प्रिंसिपल की बेटी होने के नाते उसे मेरे स्कूल में निश्चित ही मिलता।

प्रतिभा–समर्थन के अपने इन प्रयासों के चलते मैंने पाया कि जब भी विद्यार्थियों को उनका शौक पूरा करने की आजादी दी जाती है, तो स्कूल वापिस आने पर वे अपने अध्यापकों के प्रति एक जवाबदेही महसूस करते हैं, और जिन कार्यों में वे पीछे रह गए, उन्हें पूरा करने में जुट जाते हैं। यह बात खेल हो या संगीत या कोई भी अन्य प्रदर्शनकारी कला, सब क्षेत्रों के विद्यार्थियों पर लागू होती है। मैंने पाया कि वे अपने आस–पास की हर चीज को बड़ी तेजी से जज्ब करते हैं, पहले से अधिक मेहनत करते हैं और स्कूल में बिताए हर पल में ऊर्जा से भरे रहते हैं। यह बड़ी हैरत की बात थी, क्योंकि हमें तो लगता था कि वे जब भी लौटकर आएँगे, थके–हारे होंगे और आते ही सुस्ती की शरण में आराम फर्माएँगे।

हाँ, यह कहना मुश्किल है कि उनकी यह ताजादम ऊर्जा नितान्त उनकी अपनी थी, या अध्यापकों और अभिभावकों को खुश रखने, और अपने साथियों को प्रभावित करने की इच्छा से जन्मी थी।

मैंने पाया कि वे अपने आस–पास की हर चीज को बड़ी तेजी से जज्ब करते हैं, पहले से अधिक मेहनत करते हैं, और स्कूल में बिताए हर पल में ऊर्जा से भरे रहते हैं। यह बड़ी हैरत की बात थी, क्योंकि हमें तो लगता था कि वे जब भी लौटकर आएँगे, थके–हारे होंगे और आते ही सुस्ती की शरण में आराम फर्माएँगे।

खेलों के इन नन्हे सितारों के माता–पिता भावनाओं के समन्दर में कभी मजबूत तो कभी कमजोर पड़ते दिखाई देते थे। जब भी उनके लाड़ले खेल के मैदान से सफलता–प्रतिष्ठा अर्जित करके लौटते, तो उनके माता–पिता कहते कि उनके बच्चे अपने खेल को जारी रख सकें, अपना शौक पूरा कर सकें, इसके लिए वे कुछ भी करने को तैयार हैं। वे इस बात पर भी पूरा बल देते कि 'केवल पढ़ना' कोई बड़ा उद्देश्य नहीं हो सकता। लेकिन, जब यही लाड़ले बुरे दौर से गुजर रहे होते तो

खेलों की अनिश्चितता का विलाप शुरू हो जाता; वे पूछते कि बच्चे पढ़ाई–लिखाई पर ध्यान केन्द्रित कर सकें, क्या स्कूल इसमें मदद कर सकता है? हाँ, इस प्रकार की अस्थिरता अनुभवी अभिभावकों में कम दिखाई देती थी – और उन अभिभावकों में भी, जिनके बच्चे अपेक्षाकृत बड़े थे और जानते थे कि वे क्या करना चाहते हैं, फिर चाहे सफलता आसानी से हाथ न भी आए।

एक टेनिस चैम्पियन की माँ ने मुझे बताया कि कैसे उनका बेटा नहाते समय, नाश्ते की मेज पर, स्कूल बस में और ऐसी अन्य जगहों पर पढ़ने की जिद किया करता था ताकि वह समय बचा सके। मेरे साथ भी ऐसा होता था। मेरी बेटी अपना सारा होमवर्क अपनी स्कूल बस में बैठे–बैठे ही पूरा कर देती ताकि घर पहुँचते ही वह अपना शतरंज का रियाज करने के लिए एकदम तैयार हो। सचमुच एक बार अगर आपने कोई लक्ष्य तय कर लिया तो आपका शौक आपसे कुछ भी करवा सकता है!

संगीत की तरह खेल भी देश और संस्कृति की समस्त बाधाओं को तोड़ते हैं। आप यदि एक ऐसा खेल चुनते हैं जो आपको दुनिया भर की सैर करने के मौके देता है तो आप विभिन्न संस्कृतियों और सभ्यताओं के, अपने ही जैसे खिलाड़ियों के सम्पर्क में आते हैं, और आपका नजरिया, आपका सोचने–समझने का ढंग, आपकी विश्व दृष्टि में वह व्यापकता आ जाती है जो शायद बहुत कुछ पढ़ने पर भी न आए। यह प्रत्यक्ष अनुभव होता है। सीमाएँ घुल जाती हैं। दुनिया भर में आपके दोस्त बनने लगते हैं। दुनिया सिमट कर आपके करीब आ जाती है।

इसकी तुलना में, ऐसे कुछ बच्चे जो किसी खेल या शौक के दीवाने नहीं थे, अपना समय दोस्तों के साथ घूमने–फिरने में गुजारते थे। उनका बाकी समय शायद ट्यूशन में या फिर टी.वी. देखने में जाता था। लेकिन मैं इतना जानती हूँ कि वे अक्सर उकताए हुए ही रहते थे और इसीलिए उदासीन भी। इस सबसे मुझे समझ में आया कि इन विद्यार्थियों को स्वयं के लिए प्राप्त किए जा सकने वाले लक्ष्य खुद से बनाने होंगे, और हमें इसमें उनकी मदद करनी होगी। सभी छात्रों को हम अपने लिए पढ़ाई के अलावा आजीवन अनन्त खुशी देने वाला कोई एक शौक या खेल चुनने के लिए प्रोत्साहित करते। कहना न होगा कि किसी के लिए भी सबसे बेहतर स्थिति तो यही होती है कि आगे चलकर आपका पसन्दीदा खेल या आपका शौक ही आपके पेशे में तब्दील हो जाए!

और नन्हे चैम्पियन! वे पूरे स्कूल कैम्पस में राजा या रानी की शान से घूमा करते थे– आत्मविश्वास और प्रभावी लहजे से लबरेज, बिल्कुल सीधे, सिर उठाए, अधरों पर खेलती एक चपल–सलोनी मुस्कान के साथ। यह आत्मविश्वास उनके हर काम में झलकता था। अपने स्कूली जीवन में मुझे एक भी चैम्पियन खिलाड़ी नहीं मिला जिसे अक्खड़ कहा जा सकता हो। हाँ, प्रतियोगिताओं में शायद वे ऐसे होते हों, लेकिन यहाँ स्कूल में वे अद्‌भुत रूप से विनम्र नजर आते थे शायद इसलिए क्योंकि यहाँ उनके कई अन्य रूप भी थे और उनका खेल तो उनके व्यक्तित्व का एक छोटा हिस्सा भर था। ये अनुभवी खिलाड़ी नए उभरते खिलाड़ियों के लिए पथ–निर्माता भी होते थे। उनके जज्बे को उछाल मिलता था और नए स्वप्न जन्म लेते थे। और हम हर नए सपने का स्वागत करते थे।

खेल को खेल के लिए खेलने में भी एक समझदारी है। क्योंकि खेल प्रतियोगिताएँ छलावा भी दे सकती हैं। बच्चे स्टार खिलाड़ी बनें या न बनें, लेकिन छोटी उम्र से ही बच्चों को खेलने के लिए प्रेरित करने के कई फायदे हैं। एक सक्रिय खिलाड़ी की माँ होने के नाते मैंने पीड़ा और आनन्द से भरपूर जीवन जिया। किसी टूर्नामैण्ट

में हार के बेहद पीड़ादायक क्षणों के बाद भी कड़ी मेहनत और नए–नकोर इरादों के बूते बेहतर और सुखद परिणाम पाने की एक शाश्वत उम्मीद और आकांक्षा मन में कहीं बनी रहती थी। दरअसल, इस लिहाज से यह एक नशा सा ही बन गया था–सहेजे रखने लायक प्यारा नशा। कभी–कभी सोचती हूँ कि खेल और खेल प्रतियोगिताओं के लिए मेरी लालसा की शिद्दत कहीं मेरे घरेलू चैम्पियन की ललक के मुकाबले भी अधिक तो नहीं थी!

छात्रों द्वारा खेलों को अपने करियर हेतु एक गम्भीर विकल्प के तौर पर आजमाने के मुद्दे पर स्कूल आमतौर पर बहुत उत्साही नहीं होते। इसका प्रमुख कारण है परीक्षा परिणामों को लेकर हमारे स्कूलों की अनबुझ प्यास। उन्हें लगता है कि उनके पास अपनी विश्वसनीयता बनाने का यही एक रास्ता है। उनकी इस सोच के पीछे निश्चित ही सामाजिक मूल्यों का बड़ा हाथ है। इस मसले पर स्कूल बड़े अजीब–ओ–गरीब ढंग से अभिभावकों के साथ हो लेते हैं और अपना मूल्य इसी हिसाब से आँकने लगते हैं कि हर साल उनके यहाँ से कितने टॉपर और अच्छा रैंक पाने वाले कितने विद्यार्थी निकलते हैं। असल में तो इसकी बजाय उनका सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य यह होना चाहिए कि हर बच्चे को अच्छी शिक्षा मिले, अपनी सम्भावनाएँ साकार करने का भरपूर मौका और समर्थन मिले।

हाँ, खेलों के लिए लगातार पैसे जुटाना जरूर एक मुश्किल काम है। शतरंज की ही बात करें तो केवल दो चीजें सस्ती हैं – बिसात और गोटियाँ। ढंग की कोचिंग बहुत ही महँगी है। शतरंज प्रतियोगिता का आयोजन भी बेहद खर्चीला काम है। मेरे अनुमान से अधिकांश अभिभावकों के लिए यह एक मुश्किल फैसला होता होगा, वे चाहे जितने भी बड़े खेल–समर्थक क्यों न हों।

मेरा बहुत समय प्रायोजकों से मिलने, उनके सामने हमारी बात रखने और फिर एक बेनतीजा सी दिखने वाली दौड़–भाग करने में लगता था। इस तमाम मशक्कत और बार–बार की मेहनत के बाद ही कोई परोपकारी आत्मा मिल पाती थी, और हम अपने सुनहरे सपने की ओर एक कदम आगे बढ़ पाते थे।

फिर भी हम कुछेक अच्छी प्रतियोगिताएँ जीतने में सफल रहे, जिसके चलते सरकार और भारतीय खेल प्राधिकरण (स्पोर्टस् अथॉरिटी ऑफ इण्डिया – साई) से कुछ वित्तीय मदद मिली। विडम्बना यह है कि योग्यता के मापदण्ड पर मदद के हकदार होने के बावजूद आप इसके बारे में तब तक आश्वस्त नहीं हो सकते, जब तक आप राजधानी स्थित सत्ता के गलियारों में धरने की सी अवस्था में नहीं बैठते।

अपने इस अनुभव के चलते मैं अपने स्कूल के कुछ खिलाड़ियों की मदद भी कर पाई। वे चाहे किसी भी खेल के रहे हों, अपने अनुभव के आधार पर वित्तीय सहायता की तलाश में मैं सही कार्यालय में, सही मेज पर पहुँचकर इन खिलाड़ियों की मदद कर पाई। बस इसके बाद का संघर्ष मेरे बहादुर खिलाड़ियों को करना होता था। इस पूरे काम की विशालता को देखते हुए खिलाड़ियों के जीवन में कम से कम एक ऐसे प्रौढ़ व्यक्ति की आवश्यकता है जो एकाग्रचित प्रतिबद्धता के साथ उनके साथ हो।

सच में, यह देखकर बड़ी खुशी होती है कि कुछ प्रमुख टी.वी. चैनल अब 'मार्क्स फॉर स्पोर्टस्' जैसे अभियान चलाने लग गए हैं। लेकिन फिर भी हमें इस बात पर तो गौर करना होगा कि आखिर क्यों हम ऐसी दुखद स्थिति तक पहुँचे।

पढ़ाई–लिखाई के बावजूद, खेलों में श्रेष्ठता अर्जित करने का जतन आज भी जारी है। अक्सर, 'एकला चालो रे' की तर्ज पर।

देविका नाडिग *पुणे स्थित शिक्षांगन एजुकेशन इनिशिएटिव्ज के संस्थापकों में से एक हैं। वे प्राथमिक, माध्यमिक और तृतीयक स्तर पर निजी और सरकारी शैक्षिक जगत का हिस्सा रही हैं। एक भूतपूर्व प्राचार्य और शतरंज चैम्पियन कृतिका नाडिग की अभिभावक होने के नाते उन्हें विभिन्न स्कूल प्रधानाचार्यों, अध्यापकों, महाविद्यालयों के शिक्षकगण और युवाओं के साथ काम करने का अनुभव रहा है। वे कई सामाजिक पहलकदमियों के मूल्यांकन में भी शामिल रही हैं। उनसे devika@shikshangan.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।*